© 2018 IJSRSET | Volume 4 | Issue 11 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

# आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ0 रामविलास शर्माः जीवन सिद्धान्त व सैद्धान्तिक आलोचना

## ब्रह्मसिद्धान्त (ईश्वर सम्बन्धी अवधारणा)

डॉ. राजेश कुमार मिश्र
सहायक आचार्य हिन्दी विभाग,
मर्यादा देवी कन्या पी.जी. कॉलेज,
बिरगापुर, हनुमानगंज, प्रयागराज।

**सारांशः**

इस जगत में एक क्रमबद्धता बहुत पहले से चली आ रही है सब से पहले सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति जल में हुई फिर धीरे–धीरे रीढ़ विहीन जीव, फिर रीढ़ वाले इसी तरह होते होते मानव का विकास हुआ तथा यही मानव जब धीरे–धीरे बुद्धिवादी हुआ, संवेदनशील हुआ तब सोचने लगा कि किस शक्ति की वजह से सूर्य चमकता है, किस वजह से चन्द्रमा चमकता है, बारिश क्यों होती है?, ओले क्यों पड़ते है?, आंधी तुफान क्यों आते है, भूकम्प क्यों आते हैं?, बाढ़ क्यों आती हैं, ज्वार भाटा क्यों आते हैं, यह पृथ्वी किस पर टिकी है, यह जल कहां से आया, इतने प्रकार के जीव जन्तु, पेड़ पौधें, छोटे बड़े, इन सब का निर्माण किसने किया, किस प्रकार किया, किसने सोचने की क्षमता दी, किस वजह से जगत संचालित हो रहा है, दिन रात कैसे हो रहे है, जैसे कई प्रश्न मानव जहन में उठते हैं जिनके पीछे कई कारण है जिनमें कुछ सुलझे कुछ अनसुलझे है तथा जहां आकर ये बाते उलझ जाती है, सुलझती हुयी नहीं नजर आती है। वहीं आध्यात्म की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। किसी अदृश्य सत्ता के बारे मे विचार आना स्वाभाविक है। अतः विज्ञान जहां असफल हो जाता है – ईश्वर की अवधारणा वहीं सें शुरु हो जाती है।

शुक्ल जी भी जहां तक विज्ञान ने सिद्ध किया वहां तक तो वो भौतिकवादी थे, परन्तु जहां वो सिद्ध करने में असमर्थ होने लगा वहां मजबूर होकर उनको एक ऐसी सत्ता की ओर विश्वास करना पड़ा जो ईश्वर की अवधारणा के रुप में है। दर्शन के क्षेत्र में प्रविष्ट होकर वे ब्रह्मा या चैतन्य की सत्ता सवीकार कर लेते हैं। वास्तव में इस जगत मेअभी ऐसी कई बातें है, जिनके पास तक अभी विज्ञान अपने हांथ नही फैला पाया है यहां अध्यात्म की ओर झुकाव हो जाता है। यहीं आकर शुक्ल जी ब्रहम या चैतन्य की सत्ता को स्वीकार कर लेते हैं– शुक्ल जी कहते हैं– ''ब्रहम अनन्त शक्ति सम्पन्न व अनन्त स्वरुप है।''[1]शुक्ल जी ब्रहम को अनन्त शक्ति सम्पन्न मानते हुए भी उसे कारण ब्रहम मानते हैं– अर्थात वो अंधेरे में तीर नही चलाते या केवन मनगढ़ंत रुप से ब्रहम की सत्ता को अनन्त रुप मे नहीं स्वीकार कर लेते बल्कि इसके पीछे वो कारण देखते है – यहां भी शुक्ल जी तर्क व प्रमाण का सहारा लेते हुए आगे बढ़ते है, तथा कहते हैं – ''ब्रहम कारण ब्रह्म है''[2]''चारों ओर की क्रम व्यवस्था उसी चैतन्य का कारण है।''[3]जैसा किपहले बताया गया कि जगत मे कई बाते क्रमबद्ध ढंग से चल रही है पर विज्ञान अभी उसको सुलझा नहीं पाया है– अतः स्वाभाविक है ईश्वर या ब्रंह्म के बारे मे विचार होना ही है, तथा इस ब्रहम को शुक्ल जी नित्य, सत्य रंजनकारी मानते हैं।

चूंकि इस जगत की सारी व्यवस्था सदैव क्रमबद्ध ढंग से चल रही है। दिन के बाद रात तथा रात के बाद दिन, पानी, हवा, सूर्य, चन्द्र, वर्षा ये सभी बाते सदा सर्वदा हैं अतः ब्रहमा को इस सत्ता का नियामक मानना स्वाभाविक है– वो भी नित्य व निरंतर है– क्योंकि ये सारी बाते किसी न किसी सत्ता के बारे में संकेत करती है,इसी नित्यता की वजह से शुक्ल जी कहते हैं ''समष्टि रुप में वह नित्य है, अतः सत्है, अत्यंत रंजनकारी है, अतः आनन्द है।''[4]इस नित्य, अनन्त व सर्वव्यापी ब्रह्म की स्थापना शुक्ल जी ने स्वयं अपनी ओर से या किसी नयी खोज के तहत नहीं किया बल्कि यह तो एक विकासवादी परिणाम है। निरन्तर विकास के बाद आज ब्रह्म जिस रुप में है वो पहले भी इसी रुप में रहा होगा। यह कहना जरा मुश्किल है क्योंकि इस ब्रह्म का अस्तित्व उसके मानने वालो अर्थात मानव के बोध के आधार पर परिवर्तित होता रहा है। पहले जो ब्रह्म का रुप था आवश्यक नहीं है कि कल भी हों। मनुष्य अपने ज्ञान अपने संवेदना के आधार पर इसको (ब्रह्म) अलग–अलग समय में अलग–अलग स्वरुप प्रदान किया है– अतः यह स्वाभाविक है कि इस ब्रह्म का स्वरुप एक सा ही सदैव न रहा होया इसके अनेक रुप हों, यह कहा जा सकता है। कुछ भी हो, कोई भी रुप हो उस पर सत्ता (ब्रह्म) के बार में ये है कि – एक सत्ता है, जो इस जगत का संचालन करती है। रुप भले अनेकों माने गये है। शुक्ल जी अत्यंत प्राचीन काल से मान्य ब्रह्म की अवधारणाओं के आधार पर आगे बढ़ते हुए अपनी बात कहने का प्रयास करते हैं। शुक्ल जी कहते हैं ''प्राचीन आर्य जाति ने आरम्भ से ही सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि जगत् में आने वाले प्राकृतिक शक्तियों को देव रुप में प्रतिष्ठित किया था।''[5]आगे चलकर उन सब देवताओं का तत्व दृष्टि से एक में समाहार करके ब्रह्मवाद की प्रतिष्ठा हुई''[6]अर्थात वो ही मानव जब उतना विकसित नहीं हुआ था – सूर्य, चंद्र, अग्नि आदि को अलग–अलग ब्रह्म के रुप में मानकर पूजा करते थे, उपासना करते थे, अब वो इन सभी शक्तियों के पीछे एक ही ब्रह्म तत्व को स्वीकार करके उनको मान्यता दे रहा है।इस प्रकार ब्रह्म तत्व को स्वीकार करते हैं। परन्तु मायावादियों की भांति ब्रहमा को अव्यक्त व जगत को मिथ्या नहीं मानते। वो ब्रहमा को इसी जगत के रुप में देखते है। ब्रह्म के होने का प्रमाण व उसका साक्षात्कार वो इसी जगत मे करते है। जगत से परे किसी अदृश्य सत्ता को वो नहीं मानते, उनके अनुसार यही जगत जो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है वही सत्य है, तथा यही ब्रह्म का स्वरुप भी है। इस जगत से परे कोई अन्य जगत नही तथा इस ब्रहमा से परे कोई अन्य ब्रह्म नहीं है। तैत्तिरियोंपनिषद की ब्रह्मेपासना की पद्धति से उन्होने अर्न्तजगत व वाह्यजगत मे एकता स्थापित की। इसी आधार पर न ही वो वाह्य जगत का निषेध करते हैं तथा न ही मन, ज्ञान आदि अर्न्तजगत का बल्कि उन्होने इसमें एकता स्थापित करेन का प्रयास किया है वे कहते हैं– ''ज्ञानेन्द्रियों से समन्वित मनुष्य जाति जगत नामक अपार और अगाध समुद्र में छोड़ दी गई है। न जाने कब से वो इसमें बहती चली आ रही है। इसकी रुप तरंगो से उसकी कल्पना का निर्माण, और इसी के रुप में गति से उसके भीतर विविध मनोंविकारों का विधान हुआ है।''[7]कालान्तर में ब्रह्म की भावना का उत्तरोत्तर विकास होता गया और वह नारायण स्वरुप तक पहुंची। शुक्ल जी भी अनेक लोगों की तरह विष्णु को कोई वास्तविक देवता नही मानते अपितु उसे भी विकसित होती अवधारणा मानते है। उसके बारे में शुक्ल जी कहते है– ''विष्णु का स्वरुप विकसित होता रहा पहले विष्णु के प्रतीक सूर्य थे किन्तु बाद में ''नरसमष्टिक आश्रय'' लेकर विष्णु की नराकार भावना–नारायण के रुप में हुई।''[8]ईश्वर सम्बन्धी बात उठने पर यह बात भी उठनी स्वाभाविक है किशुक्ल जी निर्गुण ब्रह्म को मानते थ कि सगुण ब्रह्म को। शुक्ल जी निर्गुण व सगुण के मिथ्या विवाद में नहीं पड़ते है। वो उसके अस्तित्व में विश्वास रखते है। उसका अस्तित्व है कुछ लोग सगुण रुप में मानते है, कुछ लोग निर्गुण में, वो मानव की वैचारिक बात है कि उस सत्ता (ब्रह्म)को वेा किस रुप में स्वीकार करता है। शुक्ल जी

कहते है–'ब्रह्म के उक्त दोनों रुप सत्और नित्य है, व्यक्त और सगुण की नित्यता प्रवाह रुप है, अव्यक्त और निर्गुण वह विश्व है जो हमारे अनुभव में नहीं आया तो इसके लिए ज्ञात विश्व से भिन्न नियमों की घोषणा नहीं की जा सकती है।''[9] जहां विज्ञानवाद को मानकर ''विश्व प्रपंच की भूमिका'' नाम विज्ञानवादी पुस्तक लिखते है वही वेदान्त के दृष्टिकोण को भी स्वीकार करते है उनके इस अंतर्विरोध पर नीलकांत कहते हैं– ''शुक्ल जी की विश्व दृष्टि धार्मिक रुढ़ियों की बुनियाद पर प्रतिष्ठित है। इसका आधुनिक विज्ञान से रंचमात्र सम्बन्ध नहीं है। भारतीय वेदान्त के दृष्टिकोण शुक्ल जी का दृष्टिकोण है। शुक्ल जी इसी पक्ष में वकील हैं। धर्म के पक्ष में रक्षात्मक लड़ाई लड़ते हुए विज्ञान का, आधुनिकता का, और लोकतंत्र का बारम्बार निषेध करते है।''[10] नीलकांत के इस मत में तार्किकता है पर शुक्ल जी कें अंर्तविरोध पर यह टिप्पणी स्वयं ही एकांगी है। शुक्ल जी की ब्रह्म सम्बन्धी अवधारणा लोकबद्ध, अनुशासित व तर्कपरायण है। उनका कहना है कि ''विश्व के भीतर अखण्ड प्रलय होते रहते हैं। न जाने कितने लोग नष्ट होते रहते है। समष्टि रुप से विश्व या जगत बराबर चला चलता है।''[11]शुक्ल जी की ब्रह्म के संबंध में वह अवधारणा है जिसमें इस जगत की चलायमान रुप में स्वीकार किया जाता है। शुक्ल जी न तो निर्गुण व सगुण विवाद में पड़ते हैं तथा न ही इसमें लोगों को पड़ने की बात करते है। उन्होने कहा– ''इसकी वर्तमान स्थिति देखते हुए मजबही झगड़े बंद कर देना चाहिए।''[12]शुक्ल जी का मानना है कि चाहे वो (ब्रह्म) सगुण हो या निर्गुण हो उसकी सर्वमान्य सत्ता की जो एक समान भावना होती है कि वे सर्वमान्य सत्ता को स्वीकार करने की बात वे कहते हैं– ''सब मतों व सम्प्रदायों में धर्म व ईश्वर की जो समान्य भावना है उसी का पक्ष अब शिक्षित के अन्तर्गत कर सकता है।''[13]चूंकि शुक्ल जी शिक्षित जनता को श्रेष्ठ जनता के रुप में तथा उनकी चित्त वृत्ति को श्रेष्ठ वृत्ति स्वीकार किया है। अतःईश्वर के सम्बन्ध में निर्विवाद अवधारणा वो शिक्षितों से ही स्वीकार करने की आशा कर सकते है। उसी से समाज के अन्य वर्गों में वो अवधारणा विकसित होते होते एक स्वस्थ्य समाज का निर्माण करेगी। इस प्रकार शुक्ल जी शिक्षितों के लिये भी अंधविश्वास पूर्ण धार्मिक दृष्टिकोण नहीं बल्कि, विकासवादी दृष्टिकोण स्वीकार करते है। शुक्ल जी कहते है– ''इतिहास से प्रकट है कि आदि मे इन देशों के बीच प्रकृति की भिन्न–भिन्न शक्तियों और विभूतियों या उनके भिन्न भिन्न अधीश्वरों की भावना हुई और बहुदेवोपासना प्रचलित हुई। कुछ देशों में भेद में अभेद की तत्व दृष्टि का क्रमशः विकास हुआ और सब देवों की समष्टि रुप में एक ईश्वर की यह व्याख्या ऐतिहासिक और वैज्ञानिक एवं तत्वतः 'मार्क्स' तथा 'एंगेल्स' की ईश्वर की विकासवादी व्याख्या के अनुरुप है।[14] 'एंगेल्स' ने लिखा है–''विकास की और भी आगे की एक अवस्था में पहुंचकर नाना देवताओं के समस्त प्राकृतिक तथा समाजिक गुण एक सर्वशक्तिशाली ईश्वर में स्थानांतरित हो जाते है।''[15]अर्थात् ईश्वर की अवधारण –शुक्ल जी हवाई या निराधार नहीं है।

डॉ0 राम विलास शर्मा द्वंदात्मक भौतिकवाद के सिद्धांत को मानने वाले थे, अतः ईश्वर को मनुष्य की कल्पना मानते थे। लेकिन धर्म और ईश्वर की संकल्पनाओं को ऐतिहासिक क्रम विकास और समाजिक चेतना के स्तर से जोड़कर देखने की जो दृष्टि डॉ0 शर्मा ने ऐतिहासिक व द्वंदात्मक भौतिकवाद से अर्जित की थी, शुक्ल जी की दृष्टि को वे उसके करीब पाते हैं। शुक्ल जी डॉ0 शर्मा की तरह अनीश्वरवादी नहीं थे, लेकिन ईश्वर व धर्म संबंधी अवधारणाओं के विकासमान होने को उन्होने समझा था। डॉ0 शर्मा शुक्ल जी के बारे मे कहते हैं– ''उन्होने ईश्वर संबंधी मनुष्य की कल्पना को विकासमान स्वीकार किया है।''[16]अर्थात् शुक्ल जी ने जो दिखाया किस प्रकार मनुष्य सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि को अलग–अलग रुपों में उपासना करता हुआ आज इन सब में एक सत्ता स्वीकार कर रहा है। इसी तार्किकता की वजह से शर्मा जी कहते हैं– ''उनका दृष्टिकोण एक बुद्धिवादी और समाजशास्त्रीय का है न कि

रहस्यवादी और कल्पनावादी दार्शनिक कहा।''[17]शुक्ल जी की ईश्वर सम्बन्धी अवधारणा को ऐतिहासिक बताते हुये शर्मा जी कहते है– ''मनुष्य की तमाम धारणाओं की तरह उसकी ईश्वर सम्बन्धी अवधारणा का भी एक इतिहास है। शुक्ल जी ने सबसे पहले आदिम असभ्य जातियों को लिया है। उनके उपास्य वन देवता, ग्राम देवता, कुलदेवता आदि होते है। ये देवता पूजा पाकर रक्षा व कल्याण करते हैं और पूजा न मिलने पर रूष्ट हो जाते है और अनिष्ट भी करते है।''[18] आगे वो कहते हैं– ''आदिम जातियों का मानव इसी जीवन मे जो सुख दुख पाता था उसी व्याख्या के लिए परोक्ष सत्ता की कल्पना करता है, इसीलिए वन देवता, कुल देवता आदि का पूजा का चलन हुआ।''[19]शर्मा जी के कहने का तत्पर्य यह है कि – पहले मनुष्य प्रकृति की कई वस्तुओं जैसे बादल पानी, धूप से गर्मी, नदी से जल, वृक्षों से फल, आदि प्राप्त करता था। अतः जिन चीजों से लाभ होता था उसकी देवता के रुप में पूजा करता था तथा उसी से हानि होने पर जैसे–बादल से अतिवृष्टि, नदियों से बाढ़, बादलोंकी गड़गड़ाहट आदि को भी देवता के रुप मे मानते थे। चूंकि मनुष्य इन पर कोई नियंत्रण नहीं था न ही इतनी अधिक जानकारी थी, अतः वा इन प्राकृतिक शक्तियों को देवता का रुप देकर पूजा किया करते थे। शुक्ल जी कहते हैं 'जो आदिम जातियां असभ्य वा अन्य दशा में थी उनकी धार्मिक भावना स्थानबद्ध या कुलबद्ध देवी–देवताओं तक रहती थी। वह इससे बड़े देवता की व्यापक भावना नहीं रखती थी।''[20] आचार्य शुक्ल उस सत्ता को परम सत्ता मानते हैं– जो आज से नहीं आदिम काल से मानव के अन्दर स्वतः आ गयी है।स्वतः का तात्पर्य है– परिस्थितियाँ जीवन मे जैसे–जैसे बनती गयी वैसे–वैसे उस सत्ता का अस्तित्व बनता व बिगड़ता रहा। आज भी मजहबों के नाम पर भिन्नता है। आज भी धर्मों में सूर्य, चन्द्र, नदी, जल, वृक्ष, गाय आदि की किसी न किसी रुप में उपासना होती है। इस प्रकार जैसे फल मिलने से उपासना होती थी, सुख न मिलने पर उपासना होती थी, वही चीजें जब दुख देने लगी – नदी से बाढ़, सूर्य से जलन, बादल से अति वृष्टि हुई तो आदिम मानव ने समझा देवता रुष्ट पर बल देने लगें इस प्रकार मनुष्य को प्रकृति द्वारा प्रदत्त सुख व दुख दोनों ने उनकों एक परम सत्ता स्वीाकार करने को बाध्य किया।

शर्मा जी का मानना है कि– जो लोग प्राचीन अन्धविश्वासों व जादू–टोनों को अलौकिक शक्ति का प्रमाण मानते हैं, तथा विज्ञानवाद का विरोध करते हैं– ऐसे लोग भारतीय संस्कृति की दुहाई देते अच्छे नहीं लगते। क्योंकि प्राचीन समय के लोगों के विचार व आज के विचारों में परिवर्तन हो गये हैं। उस समय के लोगों के विचार व आज के विचारों मे परिवर्तन हो गये है। उस समय के लोगों के बारे मे शुक्ल जी कहते ह। अब और तब के मानव की भावना मे बहुत परिवर्तन हो चुका है। शर्मा जी कहते हैं– ''शुक्ल जी ने प्राचीन कुल देवताओं आदि से यहुदियों के एकेश्वरवाद के ऐतिहासिक विकास की ओर संकेत है।''[21]यहां भी शर्मा जी शुक्ल जी के विकासवादी सिद्धांतों को स्वीकार कर रहे है– तथा उनके विकासवाद का समर्थन कर रहे है। शर्मा जी कहते है– ''ब्रह्म ने भी किसी को स्वप्न मे दर्शन देकर अपनी सत्ता प्रकट नहीं की। ब्रह्मवाद की धारणा का भी ऐतिहासिक विकास हुआ। यह धारणा उन प्राकृतिक शक्तियों के समाहार से हुई जिनसे मनुष्य को उपकार और अनिष्ट की आशा रहती थी।''[22] शुक्ल जी ने प्रसिद्ध 'बहुधावदन्ति' वाले वैदिक मंत्र के प्रमाण पर माना है कि मंत्र काल मे ही मंत्र को उद्धत करके अग्नि, वायु, वरुण, इन्द्र इत्यादि एक ही ब्रह्म के नाना रुप माने जा चुके थे। ''अग्नि, वायु, वरुण, आदि ब्रह्म के अलग–अलग नाम नहीं है वरन् उसके अलग–अलग रुप है। इन अलग–अलग रुपों का समाहार करके ब्रह्म की धारणा का विकास हुआ।''[23]''अग्नि, वायु, जल आदि की भांति अन्नोंपासना ब्रह्म को अपनी अन्तसता के वाह्य जगत मे देखने का विधान है। बाहर और भीतर दोनों ओर ब्रह्म को देखने पर ही पूर्णोपासना हो सकती है। अर्थात शुक्ल जी के कहने का

तात्पर्य यह है कि  मन से ज्ञान द्वारा, उपासना द्वारा, तो हम केवल ब्रह्म को अन्तःकरण मे देख सकते है। पर अन्न आदि के रुप में उसकी सत्ता स्वीकार कर लेने पर उसके प्रत्यक्ष अनुभव के रास्ते स्पष्ट हो जाते हैं। शर्मा जी कहते हैं –''ब्रहमा की भावना को उत्तरोत्तर विकास हो रहा है।''[24]तथा शुक्ल जी ने इस प्रकार ''अर्न्तजगत् व वाह्यजगत मे एकता स्थापित की।''[25]शर्मा जी शुक्ल जी का समर्थन करते हैं जिसमे अर्न्तजगत् व वाह्यजगत की एकता स्थापित हुई है– ''मनुष्य की कल्पना भावों, मनोविकारों का विधान वाह्यजगत द्वारा हुआ है। मनुष्य स्वयं इस वास्तविक जगत का अंग है। यही अर्न्तजगत व वाह्यजगत के लौकिक एकता है।''[26]विकासवाद का वर्णन करते हुए शर्मा जी कहते है– ''उपनिषदों की ब्रहमोपासना का ही विकसित रुप विष्णू की उपासना है। विष्णू के रुप में भी परिवर्तन होता रहा है। पहले विष्णु सूर्य के प्रतीक थे फिर नर समष्टि का आश्रय लेकर नराकार भावना नारायण के रुप में हुई।''[27]शर्मा जी कहते हैं – ''सम्पूर्ण जगत्का ही दूसरा नाम ब्रह्म है। हमारा ज्ञान परिमित है। इसलिए उसके गोचर होने योग्य ब्रह्म तत्व हमें सब जगह दिखाई नहीं पडता।''[28]शुक्ल और शर्मा के ब्रह्म सिद्धान्त के बारे मे जो मूल अन्तर है वो है दोनो की ब्रह्म स्वरुप के बारे में । आचार्य शुक्ल जहां ईश्वरवादी है, ईश्वर नाम की सत्ता विशेष को स्वीकार करते हे वही डॉ0 शर्मा ईश्वर नाम की कोई अदृश्य सत्ता विशेष पर बल नही देते। बल्कि इसी जगत के अणुओं से सृष्टि के विकास के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं जो विकासवादी हैं।

**सन्दर्भ**


1. विश्व प्रपंच की भूमिका, भाग –1 (रामचन्द्र शुक्ल), पृ0 132
2. वही पृ0 132
3. वही पृ0 132
4. चिन्तामणि, भाग 1 (रामचन्द्र शुक्ल), पृ0 127
5. सूरदास, पृ0 7
6. सूरदास, पृ0 7
7. रस मीमांसा (रामचन्द्र शुक्ल), पृ0 259
8. सूरदास, पृ0 12
9. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना (डॉ0 रामविलास शर्मा) पृ0 81–82
10. रामचन्द्र शुक्ल (नीलकन्त) , पृ0 53
11. सूरदास, पृ0 13
12. विश्व प्रपंच की भूमिका (रामचन्द्र शुक्ल) पृ0 147
13. वही पृ0  147
14. वही पृ0  148
15. धर्मः कार्लमार्क्स तथा एंगेल्स (सं0 तथा हिन्दी अनुवादक रमेश सिन्हा) पृ0 159
16. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना (डॉ0 रामविलास शर्मा), पृ0 78
17. वही पृ0 78
18. वही पृ0 78
19. वही पृ0 78

20. वही पृ0 79
21. वही पृ0 79
22. वही पृ0 79
23. वही पृ0 79
24. वही पृ0 80
25. वही पृ0 80
26. वही पृ0 81
27. वही पृ0 81
28. वही पृ0 81